प्रेम वाहिनी

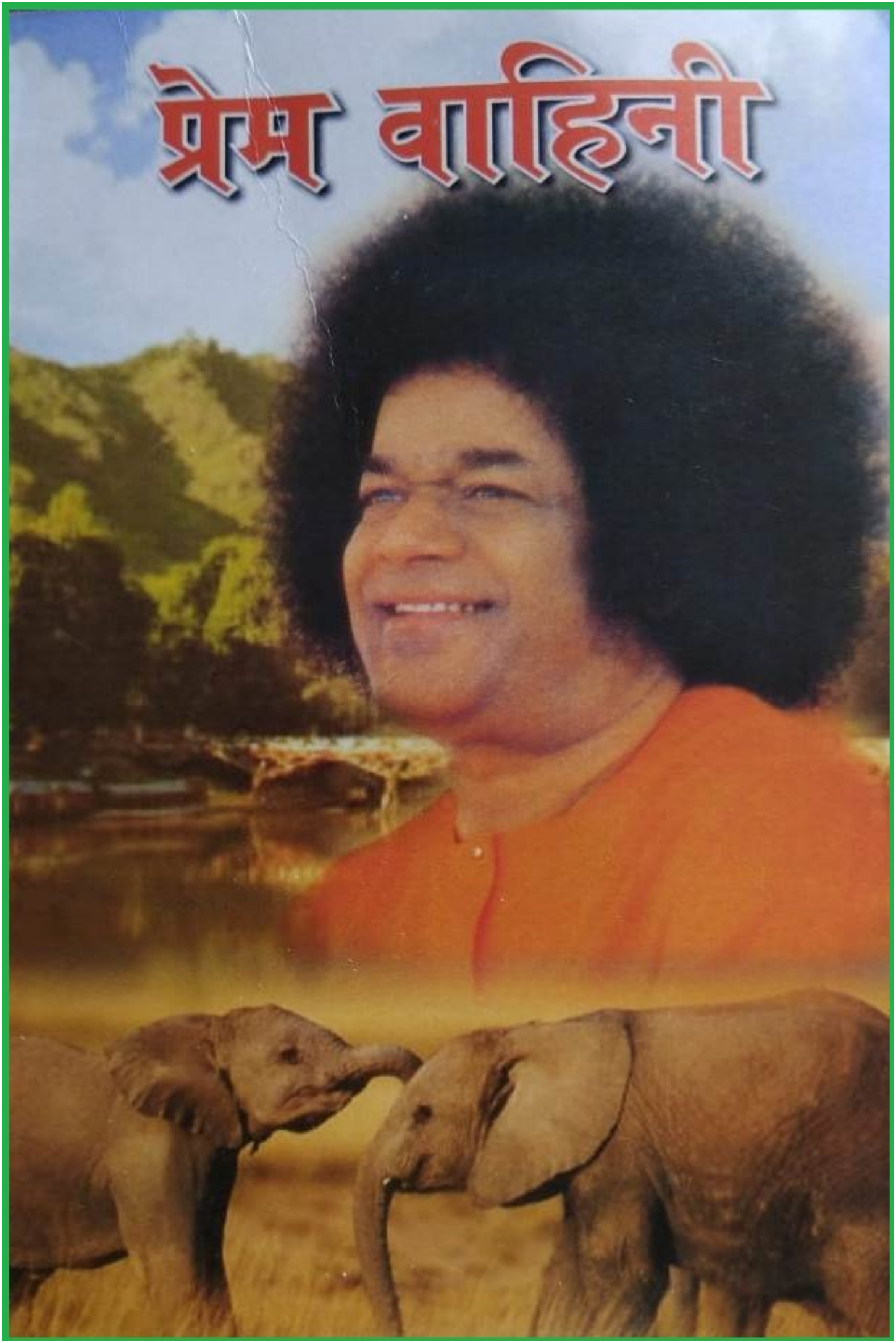

५

भक्ति और ज्ञान की एकता

भक्ति और ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। जैसे सगुण ही निर्गुण हो जाता है, भक्ति ही ज्ञान हो जाती है। मैं इससे सहमत नहीं होऊँगा कि कर्म, भक्ति और ज्ञान पृथक् हैं। मैं तो इनके वर्गीकरण में भी प्रथम, द्वितीय और अगली तृतीय श्रेणी कहे जाने को पसन्द नहीं करता हूँ। मैं इन तीनों के सम्मिश्रण अथवा समुच्चय को स्वीकार नहीं करता हूँ। कर्म भक्ति है, और भक्ति ज्ञान है। मैसूर-पाक के एक टुकड़े में मिठास होती है, भार और आकृति भी होते हैं; इन्हें एक दूसरे से अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इसके प्रत्येक नन्हें भाग में भी मिठास, भार, आकृति है। हम एक भाग में मिठास, दूसरे में भार और तीसरे में आकृति नहीं पाते हैं और जब इसे जिह्वा पर रखते हैं तो स्वाद का ज्ञान होता है, भार घटता जाता है आकृति भी परिवर्तित होती जाती है। सभी क्रियायें साथ-साथ चलती हैं। इसी प्रकार जीव, आत्मा और परमात्मा भी पृथक्-पृथक् नहीं हैं। वे सब एक और एक ही हैं।

इसलिए प्रत्येक कार्य सेवा, प्रेम और ज्ञान की भावना से संपृक्त होना चाहिये। दूसरे शब्दों में जीवन के कार्यों का प्रत्येक समूह कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों से संयुक्त होना चाहिए। यही वास्तव में पुरुषोत्तम योग है। इसे केवल शब्दों में ही व्यक्त नहीं करना है बल्कि व्यवहार में भी लाना है। भक्ति और ज्ञान से पूर्ण उदार, विशालता में निरन्तर गतिमान्, हृदय से सतत् साधना करनी चाहिए। भगवान के नाम की अमृत माधुरी ही जीवन का आकर्षण है। नाम से जो आंतरिक आनन्द की अनुभूति होती है वह बाह्य जीवन के आनन्द से घनिष्ठता से सम्बन्धित है।

जब कोई भगवान के प्रति भेंट के रूप में अर्पित क्रिया करता है तो उसका अर्थ, परार्थ और परमार्थ सब एक ही में संयुक्त हो जाते हैं। प्रथम तो 'मैं' 'तुम' मिलाकर 'हम' बनते हैं। अगले चरण में 'हम' और वह (भगवान)

संयुक्त होकर एकत्व को प्राप्त होते हैं। प्रथम जीव (व्यक्तिगत आत्मा 'मैं') सृष्टि (अर्थात् प्रकृति, 'तुम') के साथ तादात्म्य स्थापित करे तब परमात्मा (अर्थात् परब्रह्म आत्मा 'वह') के साथ एकाकार हो जावे 'ओम् तत्सत्' मंत्र का इतना व्यापक अर्थ और महत्व है।

वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों में 'ओम् तत्सत्' है और था तथा रहेगा। 'वह' 'मैं' सदा से हैं और सदा रहेंगे और साधना भी सदा रहती है। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से पृथक् अचिन्तनीय है, इसी प्रकार कोई साधक भी अपनी साधना के बिना नहीं रह सकता है। जब साधक अबाध गति से सतत् साधना में रत रहता है तभी उसे ॐ में संयुक्त माना जा सकता है।